वृ
आ
बो
सं
सा
दि
ना
के
क
आ
हैं
हो
का
सा
है
आ
है

बा
के
क
कु
प्र
पू
में
तर

मालवी लोक-साहित्य

डॉ० श्याम परमार

昭和46年度社会科学研究所共同研究旅行
寄贈 東外大・一橋大・名古屋大
合同海外学術調査団
氏

東京外国語大学
157791
47.3.31
図書館蔵書

१९६९
हिंदुस्तानी एकेडेमी
इलाहाबाद

विषय-सूची

प्रस्तावना १

प्रथम अध्याय :

मालवी – मानचित्र एवं प्रचलित उपभाषाएँ ६४

द्वितीय अध्याय :

लोकगीत-साहित्य १०१

तृतीय अध्याय :

मालवी लोक-साहित्य की धार्मिक परंपराएँ २२२

चतुर्थ अध्याय :

माच : मालवी लोकनाट्य २६५

पंचम अध्याय :

वार्ता (लोक कथा) साहित्य ३१६

षष्ठ अध्याय :

लोकोक्ति साहित्य की रूपरेखा ३४८

सप्तम अध्याय :

उपसंहार ३७१

परिशिष्ट :

बाल-गीत ३८२

जन्म-संस्कार सम्बन्धी गीत ४११

विवाह के गीत ४२३

देवी देवताओं के गीत ४३५

चन्द्रसखी के गीत ४४५

ऋतुगीत तथा अन्य ४५४

लोकोन्मुखी संतपरक लोक-गीत ४७१

कुमार गंधर्व द्वारा तैयार की गई मालवी गीतों की कुछ स्वर तालिकाएं ४८२
कुमार गंधर्व द्वारा प्रस्तुत लोकधुन का विस्तार ४८७
मालवी के रूप ४९०
लोक-साहित्य संकलन स्थानों की सूची ४९३
सहायक ग्रंथ सूची ५०१

प्रस्तावना

[अ]

'लोक' की व्याख्या—आधुनिक युग में अध्ययन की नवीन प्रवृत्तियों ने साहित्य-मनीषियों की दृष्टि में 'लोक' की महत्ता निर्विवाद रूप से प्रस्थापित कर दी है। अतएव 'लोक' से संबंधित विषयों का शास्त्रीय पक्ष 'लोक' की सर्वग्राही व्याख्या के अभाव में सर्वथा अपूर्ण है। 'लोक' शब्द की व्युत्पत्ति के संबंध में निश्चित मत उपलब्ध नहीं है, न ही भारतीय एवं पाश्चात्य-भाषाविदों में मतैक्य है। ऋग्वेद में प्रयुक्त 'देहि लोकम्' के अनुसार 'लोक' का स्थान के अर्थ में एक प्रयोग मिलता है। वेद—(अथर्ववेद और ऋग्वेद) दो प्रकार के लोक की स्थिति व्यक्त करते हैं।[1] पर ब्राह्मण-ग्रंथों, बृहदारण्यक एवं वाजसनेयि-संहिता में किसी भेदात्मक स्थिति का कोई उल्लेख प्राप्त नहीं है।

आर्यों के आगमन पर आर्येतर जातियों से मुठभेड़ दो भिन्न संस्कृतियों के संघर्ष के रूप में व्यक्त हुई। परिणाम स्वरूप 'वेद' और 'वेदेतर' अवस्था प्रकट हुई। इससे एक और अर्थ की उद्भावना सहज ही सम्भव हो गई, जिसके अनुसार 'लोक' का दूसरा अर्थ स्पष्टतः वेद-विरोधी (वेदेतर) हुआ। वेद और लोक की भिन्नता ने वेद की प्रतिष्ठा के साथ लोक के स्वतंत्र महत्त्व को क्रमशः समुन्नत किया। किन्तु आज 'लोक' का प्रयुक्त प्रभाव वेदेतर संस्कृति के सीमित अर्थ से ऊपर उठ चुका है। उसकी भावना वैदिक और अवैदिक दोनों क्षेत्रों को स्वाभाविक रूप से स्पर्श करने लगी है। आज वह परम्परा का सहेजक एवं अनुभूति का सतत संवाहक है। उसके पास अपने शब्द, भाषा और प्रभावशाली शैली है। जीवन से जुड़े हुए समस्त उपकरणों के लिये उसका अपना सामूहिक व्यक्तित्व है। वस्तुतः जिसे संस्कृति की संज्ञा दी जाती है, वह लोक से अभिन्न है। उसका उत्स 'लोक' ही है। अतएव लोक का महत्त्व सर्वकालीन है। गीता के 'अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः' के द्वारा लोक-शास्त्र तथा लौकिक आचारों का महत्त्व स्पष्टतः मान्य है। अशोक के शिलालेखों में 'लोक' का प्रयोग समस्त प्रजाजनों के हित में हुआ है।[2] बौद्ध-धर्म के प्रचार के साथ 'लोक' मानव मात्र के भावों से भूषित हुआ। प्राकृत एवं अपभ्रंश-साहित्य में प्रयुक्त लोकजत्ता

---

[1] ऋ० १०।१४।६, अथर्ववेद ८।६।१, ११।५।७ और ४।३८।५
[2] 'मनुवतरं सर्वलोकहिताय' और 'नास्तेहिकम्मतरे सर्वलोकहितप्प।'